



NIRVAN DHAM

Nirvan Sutra Mini Ebook Series

माया और मन

विचार, भ्रम और जागृति की पहचान



Aadisatv

आदिसत्व

Nirvan Dham • Nirvan Sutra Mini Ebook Series

माया और मन

विचार, भ्रम और जागृति की पहचान

Aadisatv

आदिसत्व

यह पाँच अध्यायों की एक अंतर्मुखी यात्रा है — माया की पहचान से साक्षीभाव, और साक्षीभाव से जागृति की मौन सुगंध तक।

विषय-सूची

इस पुस्तक के पाँच अध्याय मन, भ्रम, साक्षीभाव और जागृति की दिशा में
क्रमशः भीतर उतरते हैं।

- अध्याय १ — माया क्या है? मन का जन्म
- अध्याय २ — विचारों का जाल और “मैं” का भ्रम
- अध्याय ३ — सुख-दुःख का पेंडुलम: मन की चाल
- अध्याय ४ — साक्षीभाव: भ्रम से जागने की महा-औषधि
- अध्याय ५ — जागृति: जब माया का पर्दा गिरता है

माया क्या है? मन का जन्म



मेरे प्रिय,

माया को समझने के लिए पहले हमें माया के बारे में बनी हुई पुरानी धारणाओं को थोड़ा शांत करना होगा।

माया कोई बाहर बैठी हुई शक्ति नहीं है, जो तुम्हें छल रही है।

माया कोई राक्षसी छाया नहीं है, जो संसार पर पर्दा डाल रही है।

माया कोई जादू नहीं है, जिसे किसी विशेष मंत्र या चमत्कार से हटाना होगा।

माया बहुत अधिक निकट है।

इतनी निकट कि मन उसे बाहर खोजता रहता है और वह भीतर देखने की दृष्टि में ही छिपी रहती है।

माया वस्तुओं में नहीं है।

वस्तुएँ जैसी हैं, वैसी हैं।

पेड़ पेड़ है।

नदी नदी है।

आकाश आकाश है।

शरीर शरीर है।

ध्वनि ध्वनि है।

समस्या इन सबके होने में नहीं है। समस्या उस अर्थ में है जो मन इन सब पर रख देता है। समस्या उस कहानी में है जो मन देखने के तुरंत बाद बना देता है। समस्या उस अलगाव में है जो मन हर अनुभव के भीतर खींच देता है — “मैं” और “दूसरा”।

यहीं माया का जन्म है।

माया संसार नहीं है।

माया संसार को अलगाव की आँख से देखना है।

माया बाहर नहीं, देखने की दृष्टि में है

मेरे मित्र, जब तुम किसी व्यक्ति को देखते हो, तो क्या तुम उसे केवल देखते हो?

शायद नहीं।

देखते ही मन उसके बारे में कुछ कहने लगता है। यह मेरा है। यह मेरा नहीं है। यह अच्छा है। यह खतरनाक है। यह मुझे सम्मान देगा। यह मुझे चोट पहुँचा

सकता है। यह मुझसे आगे है। यह मुझसे नीचे है। यह मुझे प्रेम करता है। यह मुझे छोड़ देगा।

व्यक्ति सामने है।

पर मन उसके ऊपर अपनी पूरी कहानी रख देता है।

फिर तुम व्यक्ति से नहीं मिलते।

तुम अपनी कहानी से मिलते हो।

इसी तरह संसार से हमारा मिलना बहुत कम होता है। अधिकतर हम अपने ही अर्थों, डर, स्मृतियों और इच्छाओं से मिलते रहते हैं। आँखें बाहर देखती हैं, पर मन भीतर से पुराने रंग चढ़ाता रहता है।

सूरज उगता है।

किसी को उसमें सौंदर्य दिखता है।

किसी को काम पर देर होने की चिंता।

किसी को कविता।

किसी को उदासी।

सूरज वही है।

पर मन अलग-अलग संसार बना रहा है।

माया का अर्थ यह नहीं कि सूरज नहीं है। माया का अर्थ है कि जो मन सूरज पर अपनी स्थिति, अपनी चाह, अपना भय और अपनी स्मृति रख देता है, वह वास्तविकता को सीधे नहीं देख पाता।

माया सीधा देखना खो देना है।

माया अनुभव से पहले बन जाने वाली व्याख्या है।

माया वह धुंध है जो वस्तु पर नहीं, आँख पर होती है।

जब आँख पर धुंध हो, तो संसार धुँधला दिखता है। मूर्खता यह होगी कि हम संसार को दोष दें। जागरण यह है कि हम देखें — धुंध दृष्टि में है।

तुमने कभी सुबह-सुबह नदी पर कुहरा देखा होगा। नदी अपनी जगह है। जल अपनी जगह है। किनारे अपनी जगह हैं। पर कुहरे के कारण सब कुछ अस्पष्ट लगता है। मन भी ऐसा ही कुहरा बनाता है। वह वास्तविकता को ढकता नहीं, बल्कि वास्तविकता को स्पष्ट देखने नहीं देता।

पेड़ को देखकर केवल पेड़ देखना कठिन है।

मन तुरंत कहता है — यह सुंदर है, यह मेरे घर के सामने होना चाहिए था, यह बचपन के पेड़ जैसा है, यह कट जाएगा तो दुख होगा, यह फल देगा तो लाभ होगा।

देखो, कितनी जल्दी सीधा दर्शन कहानी बन गया।

माया कहानी है।

सत्य कहानी से पहले की खुली उपस्थिति है।

मेरे प्रिय, माया को समझना संसार से भागना नहीं है। यह समझना है कि संसार के साथ तुम्हारा जो संबंध है, उसमें कितना कुछ मन की बनाई हुई परतों से बना है। जब तक ये परतें नहीं देखी जातीं, मन स्वयं को संसार का पीड़ित मानता रहता है।

वह कहता है — संसार मुझे दुख दे रहा है।

पर गहराई में देखा जाए, तो संसार जितना दुख देता है, उससे कहीं अधिक दुख मन की व्याख्या देती है।

किसी ने एक शब्द कहा।

शब्द एक ध्वनि थी।

मन ने कहा — उसने मुझे छोटा किया।

फिर चोट बनी।

फिर स्मृति बनी।

फिर दूरी बनी।

फिर “मैं” और “वह” की दीवार और कठोर हुई।

यही माया है।

ध्वनि छोटी थी।

कहानी विशाल हो गई।

मन का जन्म: जब चेतना विचार से बँध जाती है

अब देखो, मन का जन्म कैसे होता है।

मूल रूप से यहाँ केवल जानना है।

बहुत सरल, बहुत मौन, बहुत खुला जानना।

शरीर का ज्ञान है।

श्वास का ज्ञान है।

ध्वनि का ज्ञान है।

विचार का ज्ञान है।

भावना का ज्ञान है।

इस जानने में कोई संघर्ष नहीं। यह आकाश की तरह खुला है। इसमें जो आता है, दिखाई देता है। जो जाता है, वह भी दिखाई देता है। यह जानना किसी एक अनुभव से बँधा नहीं है।

लेकिन फिर एक विचार उठता है — “मैं।”

यह विचार स्वाभाविक उपयोग में कोई समस्या नहीं है। संसार में व्यवहार के लिए “मैं” शब्द उपयोगी है। “मैं पानी पी रहा हूँ।” “मैं चल रहा हूँ।” “मैं बोल रहा हूँ।” इसमें कोई बाधा नहीं।

बाधा तब शुरू होती है जब यह विचार स्वयं को वास्तविक केंद्र मान लेता है।

“मैं” केवल भाषा का संकेत नहीं रहता।

वह पहचान बन जाता है।

फिर यह “मैं” कहता है — मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी कहानी, मेरा दुख, मेरी उपलब्धि, मेरा अपमान, मेरा परिवार, मेरी साधना, मेरी मुक्ति।

और धीरे-धीरे चेतना, जो सबको जान रही थी, विचारों की इस गाँठ से स्वयं को जोड़ लेती है। जैसे विशाल आकाश किसी छोटे बादल से कह दे — “मैं यही हूँ।” फिर बादल काला हो तो आकाश दुखी हो जाए। बादल सफेद हो तो आकाश प्रसन्न हो जाए। बादल टूटे तो आकाश कहे — “मैं नष्ट हो गया।”

यह भूल है।

पर यह भूल बहुत गहरी है।

चेतना विचार में प्रवेश नहीं करती। विचार चेतना में उठता है। लेकिन पहचान के कारण ऐसा लगता है जैसे चेतना विचार बन गई। यही मन का जन्म है।

मन केवल विचारों का समूह नहीं है।

मन वह पहचान है जो विचारों के साथ जुड़कर कहती है — “यह मैं हूँ।”

विचार आते-जाते हैं।

पर जब उनमें “मैं” की मुहर लग जाती है, तब वे मन की दुनिया बना देते हैं।

एक विचार उठा — “मुझसे गलती हुई।”

यह साधारण विचार है।

फिर दूसरा विचार आया — “मैं असफल हूँ।”

फिर तीसरा — “लोग क्या सोचेंगे?”

फिर चौथा — “मैं कभी ठीक नहीं हो पाऊँगा।”

देखते ही देखते एक छोटी घटना से एक पूरा मानसिक संसार बन गया। यह संसार बाहर उतना नहीं था जितना भीतर बन गया।

यही मन की रचना है।

चेतना ने गलती को जाना था।

मन ने गलती से पहचान बना ली।

चेतना ने भय को जाना था।

मन ने कहा — मैं भयभीत व्यक्ति हूँ।

चेतना ने दुख को जाना था।

मन ने कहा — मेरा जीवन दुख है।

यहीं माया मजबूत होती है। क्योंकि अब अनुभव केवल अनुभव नहीं रहता। वह “मेरी कहानी” बन जाता है।

मेरे प्रिय, जब तक अनुभव कहानी नहीं बनता, वह आता है और जाता है। जैसे लहर उठती है और समुद्र में लौट जाती है। पर जब मन कहता है — यह मेरी

लहर है, यह हमेशा रहेगी, यह मुझे परिभाषित करती है — तब लहर बोझ बन जाती है।

माया लहर को समुद्र से अलग मानना है।

मन उस अलगाव की कहानी है।

अलगाव की पहली रेखा

माया की सबसे गहरी जड़ है — अलगाव।

“मैं यहाँ हूँ, संसार वहाँ है।”

“मैं अलग हूँ, दूसरा अलग है।”

“मुझे बचना है, पाना है, सिद्ध होना है, सुरक्षित रहना है।”

यह अलगाव जैसे ही उठता है, भय जन्म लेता है। जहाँ “मैं” और “दूसरा” है, वहाँ तुलना आएगी। वहाँ चाह आएगी। वहाँ डर आएगा। वहाँ पकड़ आएगी। वहाँ असुरक्षा आएगी।

यदि मैं स्वयं को अलग लहर मानता हूँ, तो बाकी लहरें खतरा लग सकती हैं। कोई मुझसे बड़ी है, कोई तेज है, कोई मुझे ढक देगी, कोई मुझे मिटा देगी। पर यदि मैं अपने जल को पहचानूँ, तो हर लहर उसी समुद्र की गति है।

अद्वैत का अर्थ यह नहीं कि तुम व्यवहार में भेद नहीं देखोगे। शरीर अलग दिखाई देंगे। नाम अलग होंगे। भूमिकाएँ अलग होंगी। कोई पिता है, कोई माता है, कोई मित्र है, कोई अजनबी है। यह व्यवहार का स्तर है।

लेकिन भीतर की भूल यह है कि इन भेदों को अंतिम सत्य मान लिया जाए।

यहीं से संघर्ष शुरू होता है।

जैसे कपड़े अलग-अलग रंग के हों, पर धागा एक ही हो। मन रंगों में उलझ जाता है। जागरूकता धागे को पहचानती है।

माया रंगों को अस्वीकार नहीं करती। वह केवल धागे को भुला देती है।

जागरण रंगों को मिटाता नहीं। वह धागे को दिखा देता है।

स्वप्न देखने वाले की कथा

अब स्वप्न को देखो।

रात में कोई व्यक्ति सोता है। स्वप्न में वह जंगल में है। अंधेरा है। अचानक एक बाघ दिखाई देता है। बाघ दहाड़ता है। व्यक्ति भागता है। हृदय तेज धड़कता है। शरीर पसीने से भर जाता है। भय बिल्कुल वास्तविक लगता है।

स्वप्न के भीतर बाघ सच है।

भागना सच है।

डर सच है।

जंगल सच है।

जब तक स्वप्न चल रहा है, कोई भी आकर समझाए — “यह स्वप्न है” — तो स्वप्न देखने वाला विश्वास नहीं करेगा। उसके लिए बाघ वास्तविक है, क्योंकि वह उसके अनुभव में है।

फिर अचानक आँख खुलती है।

कमरा शांत है।

बिस्तर है।

कोई बाघ नहीं।

जंगल नहीं।

दौड़ नहीं।

पर क्या भय झूठा था?

नहीं।

भय शरीर में सचमुच उठा था।

धड़कन सचमुच तेज हुई थी।

पसीना सचमुच आया था।

बाघ झूठा था, पर भय का अनुभव वास्तविक था।

यही बहुत सूक्ष्म बात है।

माया का अर्थ यह नहीं कि अनुभव कुछ नहीं है। अनुभव हो रहा है। दुख हो रहा है। भय उठ रहा है। प्रेम उठ रहा है। चाह उठ रही है। यह सब अनुभव के स्तर पर वास्तविक है।

लेकिन जिस आधार पर पहचान बनी है, वह गलत हो सकता है।

स्वप्न में बाघ था नहीं, पर डर था।

जागते जीवन में भी कई बार मन जिन खतरों, अपमानों, असुरक्षाओं और अलगावों को अंतिम सत्य मानता है, वे मन की रचना होते हैं। पर उनसे उठे भावनात्मक अनुभव शरीर में सचमुच महसूस होते हैं।

इसलिए किसी दुखी व्यक्ति से यह कहना कि “सब माया है” करुणा नहीं है।

पहले उसके डर को सुनना होगा।

फिर धीरे से पूछना होगा — जिस बाघ से तुम भाग रहे हो, क्या उसे सचमुच देखा गया है, या वह मन की रचना है?

जागते हुए स्वप्न

मेरे प्रिय, दिन का जीवन भी एक प्रकार का स्वप्न हो सकता है।

यह कहना नहीं कि संसार नहीं है। यह कहना है कि संसार को जिस तरह मन ने पकड़ा है, वह अक्सर स्वप्न जैसा है।

स्वप्न में भी सब कुछ निजी लगता है। “मेरा संकट।” “मेरी रक्षा।” “मेरा भय।” “मेरा भागना।” जागने पर दिखता है कि पूरा स्वप्न मन में उठ रहा था।

जागते हुए भी मन अपना निजी संसार बनाता है।

एक व्यक्ति एक ही घटना में अपमान देखता है।

दूसरा अवसर देखता है।

तीसरा मज़ाक देखता है।

चौथा कोई अर्थ नहीं देता।

घटना एक है।

संसार कई बन गए।

ये संसार बाहर नहीं बने। मन में बने।

इसलिए कहा जाता है — मन ही संसार है। इसका अर्थ यह नहीं कि धरती, आकाश, लोग और शरीर नहीं हैं। इसका अर्थ है कि तुम्हारा मानसिक संसार मन की व्याख्या, पहचान और स्मृति से बना है।

और जब तुम इस मानसिक संसार को ही पूर्ण सत्य मान लेते हो, तब माया तुम्हें पकड़ लेती है।

जैसे स्वप्न में बाघ को वास्तविक मानकर भागना पड़ता है, वैसे ही जागते हुए मन की कल्पनाओं को वास्तविक मानकर हम जीवन भर भागते रहते हैं।

कभी सम्मान के पीछे।

कभी प्रेम के पीछे।

कभी सुरक्षा के पीछे।

कभी आध्यात्मिक मुक्ति के पीछे।

भागना बदलता है।

स्वप्न की संरचना वही रहती है।

जागरण की पहली झलक

तो माया से बाहर आने का अर्थ क्या है?

संसार को छोड़ देना?

नहीं।

विचारों को मार देना?

नहीं।

भावनाओं को दबा देना?

नहीं।

माया से बाहर आने का पहला संकेत है — देखना शुरू होना।

जब विचार उठे और तुम उसे विचार की तरह देखो।

जब भय उठे और तुम उसे अंतिम सत्य न मानो।

जब “मैं” और “दूसरा” की दीवार उठे और तुम पूछो — क्या यह दीवार वास्तविक है, या मन की खींची हुई रेखा?

जब दुख उठे और तुम उसे सम्मान से देखो, पर उसकी कहानी में पूरी तरह डूब न जाओ।

जब प्रेम उठे और तुम उसे पकड़ में न बदलो।

जब संसार दिखाई दे, पर उसके पीछे देखने की मौन उपस्थिति भी पहचानी जाए।

यही जागरण की पहली झलक है।

यह कोई विस्फोट नहीं भी हो सकता। यह बहुत सरल हो सकता है। जैसे स्वप्न में अचानक थोड़ी-सी शंका उठे — “क्या यह सचमुच स्वप्न है?” अभी आँख पूरी नहीं खुली, पर स्वप्न की पकड़ उतनी कठोर नहीं रही।

साक्षीभाव यही है।

स्वप्न को तोड़ना नहीं।

स्वप्न में थोड़ी जागरूकता का प्रवेश।

और जैसे ही जागरूकता आती है, माया की पकड़ ढीली पड़ती है।

मन को दोष मत दो

मन को शत्रु मत बनाओ।

मन भी उसी चेतना में उठी हुई गति है। वह गलत नहीं, बस अनदेखा है। वह अंधेरे में रस्सी को साँप समझ लेता है। उसे मारने की जरूरत नहीं। दीपक जलाने की जरूरत है।

यदि मन कहानी बना रहा है, तो उसे देखो।

यदि मन डर रहा है, तो उसे देखो।

यदि मन अलगाव बना रहा है, तो उसे देखो।

यदि मन कह रहा है — “मैं समझ गया” — तो उसे भी देखो।

मन को देखा जाए, तो वह पारदर्शी होने लगता है। बिना देखे मन स्वामी बन जाता है। देखे जाने पर वह उपकरण बन सकता है।

और तब धीरे-धीरे एक मौन समझ उठती है —

संसार को बदलने से पहले दृष्टि को देखना होगा।

क्योंकि माया वस्तुओं पर नहीं, दृष्टि पर बैठी है।

जैसे स्वप्न में बाघ से लड़ते रहने से जागरण नहीं आता। जागरण तब आता है जब स्वप्न देखने वाला अपनी स्थिति पहचानता है।

मेरे प्रिय, शायद अभी भी कोई बाघ तुम्हारे भीतर दौड़ा रहा है।

कोई डर।

कोई स्मृति।

कोई संबंध।

कोई भविष्य।

कोई आध्यात्मिक कमी।

रुककर देखो।

बाघ को तुरंत झूठा मत कहो।

डर को अपमानित मत करो।

बस दीपक थोड़ा पास लाओ।

देखो — यह सब किसमें दिखाई दे रहा है?

और जब यह प्रश्न गहराई से खुलता है, तब शायद पहली बार स्वप्न के भीतर एक शांत दरार पड़ती है।

विचारों का जाल और “मैं” का भ्रम



मेरे प्रिय,

मन को समझने की शुरुआत विचारों से होती है।

क्योंकि मन कोई अलग वस्तु नहीं है, जिसे तुम शरीर की तरह छू सको। मन कोई कमरा नहीं है, जिसमें जाकर देखा जा सके। मन कोई ठोस केंद्र नहीं है, जो सिर के भीतर कहीं बैठा हो और जीवन चला रहा हो।

मन विचारों की गति है।

स्मृतियों की धारा है।

डर की छाया है।

इच्छाओं की दौड़ है।

भविष्य की कल्पना है।

और इन सबके बीच एक बहुत सूक्ष्म दावा है — “यह मैं हूँ।”

यही दावा अहंकार है।

अहंकार कोई शैतान नहीं है। यह कोई कठोर चीज़ नहीं है जिसे तलवार से काटना पड़े। यह कोई वास्तविक सत्ता भी नहीं है जिसे नष्ट करने के लिए युद्ध करना हो। अहंकार केवल गलत पहचान है। वह विचारों के बीच उठी हुई एक गाँठ है, जो कहती है — “मैं अलग हूँ। मैं कर्ता हूँ। यह मेरा जीवन है। यह मेरा दुख है। यह मेरी कहानी है।”

जब तक यह दावा नहीं देखा जाता, तब तक विचार केवल विचार नहीं रहते। वे पहचान बन जाते हैं। और पहचान बनते ही वे बंधन बन जाते हैं।

अहंकार: ठोस व्यक्ति नहीं, विचारों की गठरी

मेरे मित्र, थोड़ा शांत होकर अपने भीतर देखो।

जिसे तुम “मैं” कहते हो, वह क्या है?

क्या वह शरीर है?

शरीर बचपन से अब तक बदल गया। हर वर्ष बदला। चेहरा बदला, आकार बदला, शक्ति बदली, स्वास्थ्य बदला। फिर भी तुम कहते रहे — “मैं।”

क्या वह मन है?

मन हर दिन बदलता है। सुबह कुछ और सोचता है, शाम कुछ और। कभी प्रेम से भरता है, कभी क्रोध से। कभी निर्णय लेता है, फिर पछताता है। कभी कहता है — “मुझे यही चाहिए,” और कुछ दिनों बाद कहता है — “अब यह नहीं चाहिए।”

क्या यह बदलता हुआ मन स्थायी "मैं" हो सकता है?

क्या "मैं" स्मृति है?

स्मृतियाँ आती-जाती हैं। कुछ स्पष्ट हैं, कुछ धुँधली। कुछ तुम भूल गए। कुछ तुम्हें गलत याद हैं। कुछ घटनाओं को मन ने अपने हिसाब से बदल दिया है। स्मृति भी स्थिर नहीं है। फिर स्मृति से बना "मैं" कितना ठोस होगा?

फिर भी मन इन्हीं टुकड़ों को जोड़कर एक कथा बनाता है।

"मैं ऐसा व्यक्ति हूँ।"

"मेरे साथ ऐसा हुआ।"

"मैंने इतना सहा।"

"मुझे यह चाहिए।"

"मुझे यह डर है।"

"मेरा भविष्य ऐसा होना चाहिए।"

इन वाक्यों को जोड़कर अहंकार एक चेहरा बना लेता है।

यह चेहरा हर क्षण बदलता है, लेकिन मन उसे स्थायी मानता रहता है। जैसे बच्चे रेत से घर बनाते हैं और उसे महल समझकर बचाने लगते हैं। लहर आती है, घर मिट जाता है, बच्चा रोता है। रेत घर बन सकती है, मिट सकती है, फिर बन सकती है। पर रेत अपनी जगह है।

अहंकार रेत का घर है।

जागरूकता रेत भी नहीं — वह तो वह खुली उपस्थिति है जिसमें घर बनते और मिटते दिखाई देते हैं।

अहंकार को यदि ध्यान से देखा जाए, तो वह केवल संचित सामग्री है। पुराने अनुभव, माता-पिता के शब्द, समाज की धारणाएँ, प्रशंसा की स्मृतियाँ, अपमान की चोटें, अधूरी इच्छाएँ, असफलताओं का भय, भविष्य की चिंता — इन्हीं सबका एक गठरी बन जाती है।

और यह गठरी कहती है — “मैं।”

पर क्या गठरी सचमुच “मैं” है?

या वह केवल उठती हुई सामग्री है जिसे जागरूकता जान रही है?

विचार अपने आप उठते हैं

अब विचारों को देखो।

क्या तुम सचमुच हर विचार को बनाते हो?

अभी कोई विचार उठता है — “यह बात सही है या नहीं?”

फिर दूसरा विचार आता है — “मैं इसे समझ रहा हूँ।”

फिर कोई पुरानी स्मृति आ सकती है।

फिर कोई चिंता।

फिर कोई ध्वनि आती है, और मन उसके बारे में सोचने लगता है।

यदि तुम बहुत ईमानदारी से देखो, तो विचार अपने आप उठते हैं। वे किसी गहरे अज्ञात स्रोत से आते दिखाई देते हैं। तुम उन्हें पहले से निमंत्रण नहीं भेजते। तुम तय नहीं करते कि अगले पाँच मिनट में कौन-कौन से विचार उठेंगे। वे आते हैं, कुछ देर रहते हैं, फिर चले जाते हैं।

जैसे आकाश में बादल आते हैं।

किस दिशा से आए, क्यों आए, कितनी देर रहेंगे — आकाश इसका हिसाब नहीं रखता।

विचार भी ऐसे ही हैं।

वे आते हैं।

वे जाते हैं।

समस्या विचारों के आने में नहीं है।

समस्या तब शुरू होती है जब जागरूकता विचार से चिपककर कहती है — “यह मेरा विचार है।”

एक विचार उठा — “मैं असुरक्षित हूँ।”

यदि वह केवल विचार की तरह देखा गया, तो वह बादल की तरह गुजर सकता है।

पर जैसे ही पहचान जुड़ी — “मैं सचमुच असुरक्षित हूँ” — उसी क्षण विचार एक संसार बन जाता है।

शरीर में कसाव आता है।

भय उठता है।

भविष्य की चिंता शुरू होती है।

पुरानी स्मृतियाँ साथ आ जाती हैं।

फिर मन प्रमाण जुटाता है — “देखो, पहले भी ऐसा हुआ था। आगे भी ऐसा होगा। लोग भरोसे के लायक नहीं हैं। जीवन सुरक्षित नहीं है।”

एक छोटा विचार पूरा जाल बन गया।

यही मन की गति है।

“मेरा विचार” से “मेरा दुख” तक

विचार स्वयं में इतने शक्तिशाली नहीं जितने वे पहचान के कारण हो जाते हैं।

आकाश में बादल हो, तो ठीक है।

पर यदि आकाश भूल जाए कि वह आकाश है और स्वयं को बादल मान ले, तब बादल का हर बदलाव अस्तित्व का संकट लगने लगेगा।

विचार आया — “किसी ने मुझे महत्व नहीं दिया।”

यह एक विचार है।

शायद इसमें कोई तथ्य हो, शायद केवल मन की व्याख्या हो। लेकिन जैसे ही यह विचार “मेरा अपमान” बन गया, दर्द गहरा हो जाता है।

फिर कहानी बनती है।

“मेरे साथ हमेशा ऐसा होता है।”

“लोग मुझे समझते नहीं।”

“मैं अकेला हूँ।”

“मैं पर्याप्त नहीं हूँ।”

अब देखो, घटना छोटी थी। किसी ने फोन नहीं उठाया। किसी ने उत्तर देर से दिया। किसी ने कठोर शब्द कह दिया। पर मन ने उसके ऊपर अपनी पूरी कहानी रख दी।

विचार से दुख बना।

दुख से पहचान बनी।

पहचान से अहंकार मजबूत हुआ।

और अहंकार फिर कहता है — “देखो, मैं सही था। संसार मेरे विरुद्ध है।”

इसलिए मुक्त होने के लिए पहले संसार को बदलना आवश्यक नहीं। पहले यह देखना आवश्यक है कि विचार कैसे “मेरा” बनता है।

यहीं बंधन की गाँठ है।

“दुख है” — यह एक अनुभव है।

“मैं दुखी व्यक्ति हूँ” — यह पहचान है।

“भय उठ रहा है” — यह देखना है।

“मैं भयभीत हूँ और हमेशा ऐसा रहूँगा” — यह मन की कहानी है।

“विचार आया” — यह साक्षीभाव है।

“मेरा विचार सच है” — यह माया है।

विचारों का जाल

विचार अकेले नहीं आते। वे एक-दूसरे को बुलाते हैं।

जैसे मकड़ी धागे से जाल बुनती है, मन विचारों से जाल बुनता है। एक विचार दूसरा लाता है। दूसरा तीसरा। तीसरा स्मृति को बुलाता है। स्मृति भविष्य की चिंता को बुलाती है। चिंता शरीर में भय जगाती है। भय फिर और विचार पैदा करता है।

कुछ ही क्षणों में मन एक पूरा संसार बना लेता है।

तुम कुर्सी पर बैठे हो, पर मन भविष्य में भाग रहा है।

तुम कमरे में हो, पर मन पिछले अपमान में जी रहा है।

तुम सुरक्षित हो, पर मन कल्पित खतरे से काँप रहा है।

तुम्हारे सामने कोई वास्तविक बाघ नहीं, पर शरीर में डर उठ रहा है जैसे बाघ सचमुच सामने हो।

यही विचारों का जाल है।

इस जाल में सबसे मजबूत धागा है — “मैं।”

यदि “मैं” की मुहर न लगे, तो विचार बहुत हल्के होते हैं। वे आते हैं, जाते हैं। लेकिन “मैं” की मुहर लगते ही विचार व्यक्तिगत बन जाते हैं। फिर उनसे बचना, उन्हें सिद्ध करना, उन्हें सही ठहराना, उनसे लड़ना — यह सब शुरू हो जाता है।

मेरे प्रिय, विचारों से मुक्ति विचारों को रोकने में नहीं है।

विचारों से मुक्ति विचारों की वास्तविकता को देखने में है।

जब तुम देखते हो कि विचार उठ रहा है, लेकिन वह अंतिम सत्य नहीं है, तब जाल ढीला पड़ता है।

विचार चलता रहता है, पर तुम उसमें उतने खोते नहीं।

आकाश और बादल

अब इसको आकाश और बादल से समझो।

तुम आकाश हो।

विचार बादल हैं।

आकाश विशाल है, खुला है, खाली है। उसमें बादल आते हैं। कभी सफेद, कभी काले, कभी भारी, कभी हल्के। कभी तूफान, कभी वर्षा, कभी साफ़ नीला विस्तार।

पर आकाश बादलों को पकड़ता नहीं।

वह नहीं कहता — “यह सुंदर बादल मेरा है, इसे रुकना चाहिए।”

वह यह भी नहीं कहता — “यह काला बादल गलत है, इसे तुरंत हटना चाहिए।”

आकाश बादलों से लड़ता नहीं।

आकाश बादलों को चिपकाकर अपनी पहचान नहीं बनाता।

बादल आते हैं।

बादल जाते हैं।

आकाश बना रहता है।

तुम्हारी जागरूकता भी ऐसी ही है।

एक विचार आता है — “मुझे सफलता चाहिए।”

दूसरा आता है — “मैं असफल हो जाऊँगा।”

तीसरा आता है — “मुझे प्रेम चाहिए।”

चौथा आता है — “मुझे कोई समझता नहीं।”

कभी आध्यात्मिक विचार आता है — “मुझे जागना है।”

कभी निराश विचार आता है — “मैं कभी नहीं जागूँगा।”

ये सब बादल हैं।

तुम उन्हें देख सकते हो।

इसका अर्थ है कि तुम उनसे बड़े हो।

यदि तुम विचार होते, तो विचार को कैसे देखते?

यदि तुम भय होते, तो भय को कैसे जानते?

यदि तुम दुख होते, तो दुख का ज्ञान किसे होता?

जानना आकाश है।

विचार बादल हैं।

बादलों से युद्ध नहीं

जब साधक यह सुनता है कि वह आकाश है, विचार बादल हैं, तो मन तुरंत एक नई कोशिश शुरू कर सकता है — “मुझे बादलों से मुक्त होना है।”

यह भी मन की चाल है।

आकाश को बादलों से मुक्त होने की आवश्यकता नहीं होती। बादल आकाश को बाँधते नहीं। वे केवल उसमें दिखाई देते हैं।

तुम्हें विचारों को मिटाना नहीं है।

तुम्हें केवल यह देखना है कि विचार तुम्हें छूते हुए भी तुम्हें परिभाषित नहीं करते।

काला बादल आए, तो आकाश काला नहीं हो जाता।

भय का विचार आए, तो जागरूकता भयभीत नहीं हो जाती।

क्रोध का विचार आए, तो जागरूकता क्रोधित नहीं हो जाती।

अहंकार का विचार आए, तो जागरूकता अहंकारी नहीं हो जाती।

विचार के स्तर पर सब बदलता है।

जानने की उपस्थिति के स्तर पर खुलापन बना रहता है।

यही साक्षीभाव है।

यह विचार-विरोध नहीं है।

यह विचार-मुक्ति की कोई हिंसक कोशिश नहीं है।

यह विचारों को उनकी जगह पर देखना है।

बादल बादल हैं।

आकाश आकाश है।

अहंकार को देखना, अहंकार से लड़ना नहीं

अहंकार से लड़ना अहंकार को ही मजबूत कर देता है।

क्योंकि लड़ने वाला कौन है?

मन ही कहता है — “मुझे अहंकार मिटाना है।”

फिर वह एक नया आध्यात्मिक अहंकार बना लेता है — “मैं अहंकार से लड़ने वाला साधक हूँ।”

यह खेल बहुत सूक्ष्म है।

इसलिए अहंकार से युद्ध नहीं।

अहंकार को देखना।

जब भीतर कोई आवाज़ कहे — “मुझे सही सिद्ध होना है” — देखो।

जब कोई कहे — “मुझे सम्मान चाहिए” — देखो।

जब कोई कहे — “मैं श्रेष्ठ हूँ” — देखो।

जब कोई कहे — “मैं बहुत छोटा हूँ” — देखो।

श्रेष्ठता और हीनता दोनों अहंकार की दो दिशाएँ हैं। एक कहती है — “मैं ऊपर हूँ।” दूसरी कहती है — “मैं नीचे हूँ।” लेकिन दोनों में “मैं” केंद्र में है।

देखो।

बिना निर्णय के।

बिना शर्म के।

बिना हिंसा के।

जैसे चिकित्सक घाव को देखता है। वह घाव से नफरत नहीं करता। वह उसे छिपाता भी नहीं। वह प्रकाश में लाता है, साफ़ करता है, समझता है।

तुम भी अपने मन को इसी करुणा से देखो।

अहंकार पाप नहीं।

अहंकार अनदेखी पहचान है।

और जो देखा जाता है, उसकी पकड़ कम होने लगती है।

क्या कोई ठोस “मैं” मिल सकता है?

अब एक सरल प्रयोग करो।

आँखें बंद कर सकते हो, या बस भीतर देख सकते हो।

विचार दिखाई दे रहे हैं।

भावनाएँ महसूस हो रही हैं।

शरीर का अनुभव है।

श्वास चल रही है।

स्मृतियाँ आ सकती हैं।

कोई नाम है।

कोई रूप है।

कोई जीवन-कथा है।

अब पूछो — इनके अतिरिक्त वह ठोस “मैं” कहाँ है?

यदि तुम शरीर की ओर इशारा करते हो, शरीर बदलता रहता है।

यदि मन की ओर इशारा करते हो, मन बदलता रहता है।

यदि स्मृति की ओर इशारा करते हो, स्मृति आती-जाती है।

यदि भावना की ओर इशारा करते हो, भावना कुछ देर बाद बदल जाएगी।

तो ठोस “मैं” कहाँ है?

यह प्रश्न डराने के लिए नहीं है।

यह मुक्त करने के लिए है।

क्योंकि जिस “मैं” को बचाने में जीवन की सारी ऊर्जा लग रही थी, वह जब खोजने पर ठोस नहीं मिलता, तो भीतर एक गहरी ढीलापन आ सकता है।

जैसे कोई वर्षों तक अपने घर की दीवार पर बनी छाया से डरता रहा। एक दिन दीपक जला और देखा — वह छाया थी। उसे मारना नहीं पड़ा। उसे हटाना नहीं पड़ा। केवल पहचान गलत थी।

अहंकार भी ऐसी ही छाया है।

उसे मारने की जरूरत नहीं।

दीपक चाहिए।

विचारों के बीच की नीरवता

विचार आते हैं।

फिर एक क्षण जाता है।

फिर दूसरा विचार आता है।

यदि ध्यान से देखो, तो विचारों के बीच हल्की-सी नीरवता है। कभी बहुत सूक्ष्म, कभी थोड़ी स्पष्ट। मन उस नीरवता को नहीं पकड़ पाता, क्योंकि वह अगले विचार में भाग जाता है।

लेकिन वही नीरवता तुम्हारी ओर संकेत करती है।

तुम विचारों के आने से पहले भी हो।

विचारों के बीच भी हो।

विचारों के बाद भी हो।

विचार तुम्हारी उपस्थिति में आते हैं। तुम विचारों से उत्पन्न नहीं होते।

जैसे स्क्रीन पर फिल्म चलती है। दृश्य आते हैं, बदलते हैं, जाते हैं। लेकिन स्क्रीन दृश्य से पैदा नहीं होती। दृश्य स्क्रीन पर निर्भर हैं। स्क्रीन दृश्य पर निर्भर नहीं।

विचार जागरूकता पर निर्भर हैं।

जागरूकता विचारों पर निर्भर नहीं।

यदि विचार शांत हों, तुम हो।

यदि विचार तेज हों, तुम हो।

यदि आनंद हो, तुम हो।

यदि भय हो, तुम हो।

यह “तुम” कोई व्यक्तिगत अहंकार नहीं। यह वह सरल जानना है जिसमें व्यक्ति का विचार भी उठता है।

“मेरा” छूटते ही हल्कापन

विचार रहेंगे।

जीवन में निर्णय होंगे।

स्मृति काम आएगी।

भविष्य की योजना भी आवश्यक हो सकती है।

व्यवहार में “मैं” शब्द भी रहेगा।

लेकिन भीतर यदि यह समझ जागने लगे कि यह सब उपकरण हैं, अंतिम पहचान नहीं, तो जीवन हल्का हो जाता है।

“विचार आया” — इतना ही पर्याप्त है।

उसे तुरंत “मेरा” मत बनाओ।

“दुख उठा” — देखो।

उसे तुरंत “मेरा जीवन दुख है” मत बनाओ।

“भय आया” — अनुभव करो।

उसे तुरंत “मैं भयभीत व्यक्ति हूँ” मत बनाओ।

“अहंकार उठा” — पहचानो।

उसे तुरंत अपराध मत बनाओ।

जैसे आकाश बादल देखकर चौंकता नहीं। वह कहता भी नहीं — “मेरा बादल।” बादल आता है, जाता है। आकाश में कोई निशान नहीं छोड़ता।

मेरे प्रिय, तुम भी ऐसे ही देख सकते हो।

धीरे-धीरे।

करुणा से।

बार-बार।

जाल दिखते ही जाल ढीला पड़ता है

मुक्ति विचारों के न होने में नहीं है।

मुक्ति विचारों को सच मानने की बेहोशी से जागने में है।

जब तुम देखते हो कि अहंकार ठोस नहीं, केवल स्मृति, चाह और भय की धारा है, तब उसका बोझ हल्का होता है।

जब तुम देखते हो कि विचार अपने आप आते हैं, तब उनसे अपराधबोध कम होता है।

जब तुम देखते हो कि दुख “मेरा” बनते ही गहरा होता है, तब पकड़ ढीली होती है।

जब तुम देखते हो कि तुम आकाश हो और विचार बादल हैं, तब बादलों का मौसम अपना स्थान पा लेता है।

अब विचारों को आने दो।

उन्हें रोकना नहीं।

उन्हें पकड़ना नहीं।

उन्हें अंतिम सत्य मत बनाना।

बस इस शांत खुलेपन में देखो —

कौन जान रहा है?

किसमें विचार उठ रहे हैं?

किसमें "मैं" का दावा बन रहा है?

किसमें यह दावा देखा जा रहा है?

और शायद, इस देखने में, पहली बार अहंकार एक ठोस दीवार नहीं, केवल धुँ की रेखा-सा दिखाई दे।

दिखते ही वह उतना भारी नहीं रहता।

जैसे बादल घने हों, फिर भी आकाश कभी सचमुच ढका नहीं होता।

केवल देखने वाले को ऊपर उठकर देखना होता है।

सुख-दुःख का पेंडुलम: मन की चाल



मेरे प्रिय,

मन एक सीधी रेखा में नहीं चलता।

मन झूलता है।

कभी आशा में।

कभी निराशा में।

कभी उत्साह में।

कभी टूटन में।

कभी प्रेम में।

कभी भय में।

कभी सफलता की ऊँचाई पर।

कभी असफलता की गहराई में।

और साधारण मनुष्य इस झूले को ही जीवन मान लेता है।

वह सोचता है कि यदि झूला केवल सुख की ओर रुका रहे, तो जीवन सफल हो जाएगा। यदि दुःख न आए, यदि असफलता न आए, यदि अकेलापन न आए, यदि भय न आए, यदि हानि न आए — तो यही शांति है।

लेकिन मन के क्षेत्र में ऐसा संभव नहीं।

क्योंकि मन द्वैत में ही जीता है।

मन को विरोध चाहिए।

अच्छा तभी है जब बुरा हो।

सफलता तभी है जब असफलता का भय हो।

सुख तभी है जब दुःख की छाया हो।

सम्मान तभी मीठा लगता है जब अपमान का डर हो।

पाना तभी चमकता है जब खोने की संभावना साथ चलती हो।

मन एक पक्ष को पकड़ना चाहता है, पर दूसरा पक्ष उसी सिक्के के पीछे जुड़ा होता है।

तुम केवल सुख को पकड़ना चाहते हो।

पर सुख की छाया में दुःख पहले से छिपा है।

मन का द्वैत

मन चीज़ों को जैसा है वैसा नहीं देखता। वह तुरंत बाँटता है।

यह अच्छा है।

यह बुरा है।

यह मेरा है।

यह मेरा नहीं है।

यह मुझे चाहिए।

यह मुझे नहीं चाहिए।

यह मुझे ऊपर ले जाएगा।

यह मुझे गिरा देगा।

यही मन की मूल गति है।

वह विभाजन करता है। फिर उसी विभाजन में उलझ जाता है। जिस क्षण कोई अनुभव आता है, मन उसे नाम देता है। यदि वह मन की इच्छा के अनुसार है, तो उसे सुख कहा जाता है। यदि इच्छा के विरुद्ध है, तो उसे दुःख कहा जाता है।

घटना अपने आप में कई बार बहुत सरल होती है।

पर मन उसे तुरंत अपने केंद्र से जोड़ देता है।

किसी ने प्रशंसा की — सुख।

किसी ने आलोचना की — दुःख।

धन आया — सुख।

धन गया — दुःख।

कोई पास आया — सुख।

कोई दूर गया — दुःख।

शरीर स्वस्थ है — सुख।

शरीर बीमार है — दुःख।

देखो, मन की शांति कितनी बाहरी परिस्थितियों पर टिकी हुई है। वह हर समय संसार से कह रहा है — “मेरे अनुसार चलो, ताकि मैं सुखी रह सकूँ।”

पर संसार मन के अनुसार नहीं चलता।

जीवन अपनी धारा में चलता है।

ऋतुएँ बदलती हैं।

लोग बदलते हैं।

शरीर बदलता है।

संबंध बदलते हैं।

स्थितियाँ बदलती हैं।

और हर बदलाव के साथ मन फिर झूलता है।

मेरे मित्र, यही पेंडुलम है।

सुख की खोज का छिपा हुआ भय

मन सुख चाहता है। इसमें कोई दोष नहीं दिखता। कौन दुःख चाहता है? कौन पीड़ा चाहता है? कौन अपमान, हानि, अकेलापन या असफलता चाहता है?

पर गहराई से देखो।

सुख की खोज में ही भय छिपा है।

क्योंकि जिसे तुम सुख कहते हो, वह किसी चीज़ पर निर्भर है।

यदि सुख किसी व्यक्ति पर निर्भर है, तो उस व्यक्ति के बदलने का डर साथ आएगा।

यदि सुख धन पर निर्भर है, तो धन घटने का डर साथ आएगा।

यदि सुख शरीर की सुंदरता या शक्ति पर निर्भर है, तो उम्र का डर साथ आएगा।

यदि सुख सम्मान पर निर्भर है, तो आलोचना की चोट बढ़ जाएगी।

यदि सुख आध्यात्मिक अनुभव पर निर्भर है, तो उस अनुभव के खो जाने का डर साथ आएगा।

इसलिए सुख की पकड़ भय को जन्म देती है।

तुम जिसे पकड़ते हो, उसी को खोने से डरते हो।

और डर मन को शांत नहीं रहने देता।

एक व्यक्ति प्रेम में सुख खोजता है। प्रेम आता है, हृदय खुलता है, जीवन सुंदर लगता है। फिर धीरे-धीरे एक भय जन्म लेता है — “यह व्यक्ति मुझे छोड़ न दे।” अब वही प्रेम, जो फूल था, पकड़ बन जाता है। पकड़ से चिंता आती है। चिंता से संदेह आता है। संदेह से संघर्ष आता है। और जो सुख था, वही धीरे-धीरे दुःख का द्वार बन सकता है।

क्या प्रेम दोषी है?

नहीं।

पकड़ दुख देती है।

सुख दोषी नहीं है।

उससे पहचान दुख देती है।

एक सिक्के के दो पहलू

सुख और दुःख दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

यदि तुम एक पहलू को पकड़ते हो, दूसरा साथ आता है।

जब मन कहता है — “मुझे केवल जीत चाहिए,” तो हार का भय तुरंत जन्म लेता है।

जब मन कहता है — “मुझे केवल प्रशंसा चाहिए,” तो आलोचना की चोट बढ़ जाती है।

जब मन कहता है — “मुझे केवल आनंद चाहिए,” तो उदासी असहनीय लगने लगती है।

जब मन कहता है — “मुझे केवल शांति चाहिए,” तो बेचैनी शत्रु बन जाती है।

यहीं माया की सूक्ष्म चाल है।

वह तुम्हें सुख की ओर आकर्षित करती है। फिर उसी सुख की रक्षा में तुम्हें भय देती है। फिर जब सुख बदलता है, तो दुःख देती है। फिर दुःख से बचने के लिए तुम फिर सुख की ओर भागते हो।

चक्र चलता रहता है।

मन कहता है — “अगली बार स्थायी सुख मिलेगा।”

पर स्थायी सुख मन के क्षेत्र में नहीं हो सकता, क्योंकि मन स्वयं परिवर्तन की धारा है।

जो बदलने वाले पर टिका है, वह स्थिर कैसे होगा?

जो आता-जाता है, उससे स्थायी शांति कैसे मिलेगी?

मेरे प्रिय, यह बात कठोर नहीं है। यह बहुत करुणामय समझ है। क्योंकि जब यह दिखता है कि संसारिक सुख स्थायी शांति नहीं दे सकता, तब मन संसार से नफरत नहीं करता। वह केवल उससे असंभव माँगना बंद करता है।

फूल से सुगंध लो।

पर उससे अनंत सुरक्षा मत माँगो।

संबंध में प्रेम लो।

पर उससे अपनी पूर्णता मत माँगो।

धन का उपयोग करो।

पर उससे अस्तित्व की गारंटी मत माँगो।

जीवन की सुंदरता का आनंद लो।

पर उससे स्थायी पहचान मत बनाओ।

पेंडुलम की चाल

अब पेंडुलम को देखो।

घड़ी का पेंडुलम एक ओर जाता है, फिर दूसरी ओर लौटता है। जितना दूर एक ओर जाएगा, उतना ही बल लेकर दूसरी ओर लौटेगा।

मन भी ऐसा ही है।

जब वह अत्यधिक उत्साह में जाता है, तो निराशा की संभावना उतनी ही गहरी हो जाती है।

जब वह किसी व्यक्ति से अत्यधिक चिपकता है, तो खोने का भय उतना ही तीव्र होता है।

जब वह सफलता को अपनी पहचान बना लेता है, तो असफलता उसे तोड़ देती है।

जब वह आनंद को पकड़ता है, तो आनंद के जाने पर खालीपन गहरा होता है।

देखो, यह नियम जैसा है।

जितना अधिक मन किसी लहर पर चढ़ता है, उतना ही उसके गिरने का डर साथ चलता है।

एक व्यक्ति किसी उपलब्धि से बहुत उत्साहित होता है। उसे लगता है — “अब मैं कुछ हूँ।” कुछ दिनों तक भीतर आनंद रहता है। फिर वही उपलब्धि सामान्य हो जाती है। मन को अब नया शिखर चाहिए। यदि नया शिखर नहीं मिला, तो खालीपन आता है।

यह खालीपन उपलब्धि की कमी से नहीं, पहचान की भूख से आता है।

मन ने कहा था — “यह मिले तो मैं पूर्ण हूँ।”

मिल गया।

फिर भी पूर्णता टिक न सकी।

अब मन कहता है — “शायद कुछ और चाहिए।”

यही पेंडुलम है।

सुख से दुःख।

दुःख से सुख की खोज।

फिर सुख।

फिर भय।

फिर हानि।

फिर दुःख।

फिर नई खोज।

जब तक यह देखा नहीं जाता, मन इसी झूले को जीवन समझता रहता है।

आनंद और उत्तेजना का अंतर

मेरे मित्र, यहाँ एक सूक्ष्म भेद समझना होगा।

मन जिस सुख को खोजता है, वह अक्सर शांति नहीं, उत्तेजना होती है।

उत्तेजना में गति है।

हृदय तेज होता है।

कल्पना दौड़ती है।

भविष्य चमकता है।

“अब कुछ बड़ा होगा।”

“अब मैं पूरा हो जाऊँगा।”

“अब जीवन बदल जाएगा।”

उत्तेजना में ऊर्जा होती है, पर स्थिरता नहीं। वह ऊपर उठाती है, फिर छोड़ देती है। जैसे पटाखा चमकता है, आवाज़ करता है, फिर अंधेरा रह जाता है।

शांति दीपक की लौ जैसी है।

धीमी।

स्थिर।

बिना शोर।

बिना प्रदर्शन।

मन अक्सर पटाखे को शांति समझ लेता है। वह चमक से मोहित होता है। उसे लगता है — यही जीवन है। पर हर चमक के बाद थकान आती है। हर उत्तेजना के बाद खालीपन आता है। हर अधिकता के बाद गिरावट आती है।

इसलिए जो व्यक्ति लगातार सुख खोजता है, वह भीतर से थका हुआ रहता है।

क्योंकि वह उत्तेजना को शांति समझकर पीछे भाग रहा है।

शांति भागने से नहीं मिलती।

शांति पेंडुलम के केंद्र में है।

केंद्र कहाँ है?

पेंडुलम झूलता है।

एक ओर सुख।

दूसरी ओर दुःख।

एक ओर आशा।

दूसरी ओर भय।

एक ओर पाना।

दूसरी ओर खोना।

पर पेंडुलम का एक केंद्र भी है। एक बिंदु है जहाँ से झूलना देखा जा सकता है। वह स्वयं झूलता नहीं। वह पेंडुलम की गति का आधार है।

तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही केंद्र है।

वही साक्षीभाव।

वही जागरूकता।

वही शांत जानना।

सुख उठता है — वह जानता है।

दुःख उठता है — वह जानता है।

उत्साह आता है — वह जानता है।

निराशा आती है — वह जानता है।

प्रेम आता है — वह जानता है।

भय आता है — वह जानता है।

जो जान रहा है, वह स्वयं सुख नहीं है। वह दुःख भी नहीं है। वह दोनों को जानने वाली खुली उपस्थिति है।

यही केंद्र है।

और यही शांति है।

शांति सुख की अधिकता नहीं है।

शांति दुःख की अनुपस्थिति भी नहीं है।

शांति वह स्थिरता है जो सुख और दुःख दोनों को आते-जाते देखती है।

यह बात बहुत गहरी है।

क्योंकि जब तक तुम शांति को सुख समझते रहोगे, तुम सुख के पीछे भागते रहोगे। और सुख के पीछे भागना तुम्हें फिर दुःख तक ले जाएगा। लेकिन जब

तुम शांति को साक्षीभाव में पहचानते हो, तब पेंडुलम झूल सकता है, फिर भी भीतर कुछ अडोल रहता है।

सुख को छोड़ना नहीं, पकड़ को देखना

अब मन फिर भ्रम बना सकता है।

वह कह सकता है — “तो क्या सुख गलत है? क्या आनंद नहीं लेना चाहिए? क्या संबंधों से दूर हो जाना चाहिए? क्या जीवन की सुंदरता से मुँह मोड़ लेना चाहिए?”

नहीं, मेरे प्रिय।

सुख गलत नहीं है।

फूल की सुगंध लो।

भोजन का स्वाद लो।

प्रियजन की मुस्कान देखो।

संगीत सुनो।

वर्षा में भीगती धरती की गंध लो।

जीवन की सुंदरता से भागना जागरण नहीं है।

जागरण का अर्थ है — सुंदरता को देखना, पर उससे बँधना नहीं।

सुख आए, तो उसे जगह दो।

पर उसे पकड़कर यह मत कहो — “यही मेरी पूर्णता है।”

प्रेम आए, उसे बहने दो।

पर उसे कैद मत बनाओ।

सफलता आए, उसका उपयोग करो।

पर उससे अपनी पहचान मत बनाओ।

आनंद आए, धन्यवाद दो।

पर उसे स्थायी बनाने की बेचैनी मत पालो।

साक्षीभाव जीवन-विरोध नहीं है।

वह जीवन को अधिक गहराई से जीने की क्षमता है, क्योंकि अब तुम हर अनुभव से अपनी पहचान नहीं बनाते।

जब पकड़ नहीं होती, तब आनंद अधिक शुद्ध होता है।

क्योंकि उसमें भय कम होता है।

दुःख का दूसरा चेहरा

दुःख को भी देखो।

दुःख केवल शत्रु नहीं है। कई बार वह तुम्हें दिखाता है कि तुम कहाँ बँधे हुए हो।

जहाँ दुःख तीव्र है, वहाँ पकड़ तीव्र है।

जहाँ खोने का भय अधिक है, वहाँ पहचान बनी हुई है।

जहाँ अपमान असहनीय है, वहाँ “मैं” की छवि कठोर है।

जहाँ अकेलापन काटता है, वहाँ भीतर पूर्णता बाहर खोजी जा रही है।

दुःख को तुरंत हटाने की जल्दी मत करो। उसे सुनो। वह कई बार सच्चा गुरु बन सकता है। वह कहता है — “देखो, यहाँ तुमने किसी चीज़ को स्वयं से बड़ा बना दिया है। यहाँ तुमने बाहरी रूप पर अपनी शांति रख दी है। यहाँ तुमने सुख को पकड़ लिया था।”

दुःख तुम्हें दंड देने नहीं आता।

यदि जागरूकता हो, तो दुःख भी दर्पण बन सकता है।

पर यदि पहचान हो, तो दुःख कहानी बन जाता है।

चुनाव यही है — दर्पण या कहानी।

साक्षीभाव दुःख को दर्पण बना देता है।

केंद्र में लौटना

जब मन सुख की ओर दौड़े, रुककर देखो।

कौन दौड़ रहा है?

क्या वह सुख सचमुच स्थायी होगा?

क्या इसमें कोई छिपा हुआ भय है?

क्या यह प्रेम है या पकड़?

क्या यह आनंद है या उत्तेजना?

जब दुःख उठे, तब भी देखो।

क्या दुःख में कोई टूटी हुई अपेक्षा है?

क्या कोई पहचान आहत हुई है?

क्या कोई कल्पना टूट गई है?

क्या कोई पकड़ छूटी है?

इन प्रश्नों को कठोरता से मत पूछो। इन्हें करुणा से पूछो। जैसे कोई दीपक अंधरे में रखा जाता है। दीपक अंधरे को अपमानित नहीं करता। वह केवल दिखाता है।

देखना ही केंद्र में लौटना है।

सुख में खोना नहीं।

दुःख से भागना नहीं।

दोनों को जानना।

यही संतुलन नहीं, इससे भी गहरी बात है — यह संतुलन के पीछे की अचलता है।

केंद्र संतुलन बनाने की कोशिश नहीं करता।

केंद्र केवल केंद्र है।

पेंडुलम को चलने दो

अब जीवन चलता रहेगा।

कभी सुख आएगा।

कभी दुःख आएगा।

कभी किसी का प्रेम मिलेगा।

कभी दूरी मिलेगी।

कभी शरीर स्वस्थ रहेगा।

कभी रोग आएगा।

कभी धन आएगा।

कभी खर्च बढ़ेगा।

कभी लोग समझेंगे।

कभी गलत समझेंगे।

तुम पेंडुलम को रोक नहीं सकते। जीवन की सतह पर गति रहेगी। मन अपनी पुरानी आदत से झूलेगा भी। पर अब धीरे-धीरे एक नया देखना संभव है।

झूला चल रहा है।

पर मैं केवल झूला नहीं हूँ।

सुख आ रहा है।

पर मैं सुख नहीं हूँ।

दुःख आ रहा है।

पर मैं दुःख नहीं हूँ।

उत्साह उठ रहा है।

पर मैं उत्साह नहीं हूँ।

खालीपन उठ रहा है।

पर मैं खालीपन नहीं हूँ।

ये सब जागरूकता में उठे हुए मौसम हैं।

और जागरूकता मौसम नहीं है।

वह आकाश है।

शांत केंद्र की सुगंध

मेरे प्रिय, शांति खोजने की वस्तु नहीं है।

शांति उस क्षण प्रकट होती है जब मन के झूले को देखा जाता है।

जब तुम सुख को पकड़ते नहीं, दुःख को धक्का नहीं देते, तब एक मधुर खालीपन खुलता है। वही खालीपन डरावना नहीं। वही खुलापन है। वही केंद्र है। वही विश्राम है।

मन पूछेगा — “क्या इसमें आनंद है?”

कभी आनंद होगा।

कभी नहीं होगा।

मन पूछेगा — “क्या इसमें स्थायी सुख है?”

नहीं, यह सुख नहीं।

यह सुख-दुःख से पहले की स्थिरता है।

मन पूछेगा — “तो फिर यह क्या है?”

यह वही है जो प्रश्न को भी जान रहा है।

यह वही है जो पेंडुलम की सारी गति के पीछे अडोल है।

जैसे समुद्र की सतह पर लहरें उठती हैं, पर गहराई में एक मौन स्थिरता रहती है। सतह पर तूफान हो सकता है। नीचे एक विशाल नीरवता है। यदि तुम केवल

सतह हो, तो हर लहर संकट है। यदि तुम गहराई को पहचानते हो, तो लहरें आती-जाती रहेंगी।

जीवन का रहस्य लहरों को रोकने में नहीं।

अपनी गहराई पहचानने में है।

और जब यह पहचान थोड़ी-सी भी खुलती है, तब सुख भी हल्का होता है और दुःख भी हल्का।

क्योंकि अब दोनों तुम्हारे अतिथि हैं।

तुम उनका घर नहीं हो।

तुम वह खुला केंद्र हो जहाँ वे आते हैं, ठहरते हैं, और लौट जाते हैं।

पेंडुलम झूलता रहता है।

पर भीतर कहीं एक बिंदु है जो कभी नहीं झूलता।

उसी बिंदु पर बैठो, मेरे मित्र।

शायद वहीं से पहली बार तुम जीवन को बिना पीछा किए, बिना भागे, बिना पकड़ के देख सको।

साक्षीभाव: भ्रम से जागने की महा- औषधि



मेरे प्रिय,

माया को समझना पर्याप्त नहीं है।

क्योंकि मन बहुत कुछ समझ सकता है, और फिर भी उसी पुराने भ्रम में जीता रह सकता है। वह कह सकता है — “सब मन की रचना है।” वह कह सकता है — “विचार बादल हैं।” वह कह सकता है — “सुख-दुःख का पेंडुलम है।” फिर भी अगले ही क्षण कोई शब्द, कोई स्मृति, कोई भय, कोई इच्छा उसे फिर खींच लेती है।

इसलिए केवल समझ नहीं चाहिए।

देखना चाहिए।

और यही देखना साक्षीभाव है।

साक्षीभाव कोई कठिन साधना नहीं है। यह कोई विशेष आसन नहीं। कोई जंगल में भागना नहीं। कोई मन को दबाना नहीं। कोई विचारों से युद्ध नहीं। कोई भावनाओं को पवित्र और अपवित्र में बाँटना नहीं।

साक्षीभाव का अर्थ है — जो हो रहा है, उसे साफ़-साफ़ देखना।

बिना तुरंत उसमें खोए।

बिना तुरंत उसे बदलने की कोशिश किए।

बिना उसे अपना अंतिम सत्य मान लिए।

यही भ्रम से जागने की महा-औषधि है।

माया अंधकार नहीं है जिसे तोड़ना है।

माया गलत पहचान है जिसे देखना है।

और साक्षीभाव वह दीपक है जिसमें गलत पहचान धीरे-धीरे अपनी पकड़ खो देती है।

साक्षीभाव क्या है?

मेरे मित्र, साक्षीभाव का अर्थ है — मन के नाटक को देखना, लेकिन उसमें पात्र बनकर पूरी तरह खो न जाना।

विचार उठता है।

तुम उसे देखते हो।

भावना उठती है।

तुम उसे देखते हो।

शरीर में कसाव आता है।

तुम उसे देखते हो।

डर उठता है।

तुम उसे देखते हो।

इच्छा उठती है।

तुम उसे देखते हो।

कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है।

मन फूलता है।

तुम देखते हो।

कोई आलोचना करता है।

मन सिकुड़ता है।

तुम देखते हो।

यह देखना ठंडा या कठोर नहीं है। यह ऐसा नहीं कि तुम जीवन से कट जाओ। साक्षीभाव का अर्थ यह नहीं कि तुम्हारा हृदय पत्थर हो जाए। इसका अर्थ है — हृदय में जो उठ रहा है, वह जागरूकता में दिखाई दे।

पहले तुम क्रोध थे।

अब क्रोध दिखाई दे सकता है।

पहले तुम भय थे।

अब भय दिखाई दे सकता है।

पहले तुम अपमान थे।

अब अपमान की भावना दिखाई दे सकती है।

यही छोटी-सी दूरी मुक्ति का द्वार है।

यह दूरी अलगाव की दूरी नहीं है। यह जागरूकता की खुली जगह है। जैसे आकाश बादल से दूर नहीं, फिर भी बादल नहीं। जैसे समुद्र लहर से अलग नहीं, फिर भी केवल लहर नहीं।

साक्षीभाव कहता है — अनुभव आए, पर मैं केवल अनुभव नहीं हूँ।

मन से लड़ना नहीं

साधक की सबसे बड़ी भूल यह है कि वह मन को शत्रु बना लेता है।

वह कहता है — “मुझे विचार रोकने हैं।”

“मुझे क्रोध नहीं आने देना।”

“मुझे भय से मुक्त होना है।”

“मुझे मन को मारना है।”

लेकिन मन से लड़ना, मन को ही और बड़ा बना देता है। जिस चीज़ से तुम लड़ते हो, तुम उसे ऊर्जा देते हो। विचारों से युद्ध, विचारों को केंद्र बना देता है। भावनाओं को दबाना, उन्हें भीतर गहरा जमा देता है।

यदि कोई बच्चा रो रहा हो और तुम उसके मुँह पर हाथ रख दो, तो रोना बंद दिख सकता है। पर दर्द समाप्त नहीं होता। वह भीतर और गहरा चला जाता है।

मन भी ऐसा ही है।

तुमने भय को दबाया, वह किसी और रूप में लौटेगा।

तुमने क्रोध को दबाया, वह कटुता बन सकता है।

तुमने इच्छा को दबाया, वह छिपी हुई बेचैनी बन सकती है।

तुमने दुख को आध्यात्मिक वाक्यों से ढक दिया, वह भीतर अकेला रह जाएगा।

साक्षीभाव दबाता नहीं।

साक्षीभाव अनुमति देता है।

वह कहता है — भय है, ठीक है, दिखो।

क्रोध है, ठीक है, दिखो।

दुख है, ठीक है, दिखो।

इच्छा है, ठीक है, दिखो।

यह अनुमति बेहोशी नहीं है। यह बहुत जागी हुई करुणा है। यह मन को खुली आँखों से देखने का साहस है।

जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं

कई लोग सोचते हैं कि साक्षीभाव केवल शांत स्थान में संभव है। ध्यान-कक्ष में। नदी किनारे। पहाड़ पर। किसी आश्रम में। किसी गुरु की उपस्थिति में।

हाँ, शांत स्थान सहायक हो सकते हैं। वहाँ मन की धूल थोड़ी जल्दी बैठ सकती है। पर यदि साक्षीभाव केवल शांत स्थान में है, तो वह अभी जीवन में नहीं उतरा।

सच्चा साक्षीभाव बाजार में भी हो सकता है।

घर की बातचीत में भी।

काम के दबाव में भी।

फोन की आवाज़ के बीच भी।

बिल भरते हुए भी।

किसी के कठोर शब्द सुनते हुए भी।

बच्चे की रोने की आवाज़ के बीच भी।

शरीर की थकान में भी।

जीवन जहाँ है, साक्षीभाव वहीं चाहिए।

क्योंकि माया भी वहीं उठती है।

तुम्हें जंगल भागकर मन नहीं मिलेगा। मन तुम्हारे साथ जाएगा। जंगल में भी वह भविष्य बनाएगा, स्मृति लाएगा, तुलना करेगा, कहेगा — “मैं अब शांत साधक हूँ।”

इसलिए स्थान बदलना अंतिम उपाय नहीं।

दृष्टि बदलना आवश्यक है।

जंगल भीतर खुलना चाहिए।

भीड़ के बीच भी।

शोर के बीच भी।

दैनिक जीवन के साधारण क्षणों में भी।

दर्पण की तरह होना

अब दर्पण को देखो।

दर्पण के सामने आग रखो, वह आग को दिखाता है।

पर जलता नहीं।

दर्पण के सामने कूड़ा रखो, वह कूड़े को दिखाता है।

पर गंदा नहीं होता।

दर्पण के सामने फूल रखो, वह फूल को दिखाता है।

पर सुगंध से चिपकता नहीं।

दर्पण के सामने आँसू हों, हँसी हो, क्रोध हो, सौंदर्य हो, कुरूपता हो — वह सबको प्रतिबिंबित करता है। पर किसी से अपनी पहचान नहीं बनाता।

तुम वही दर्पण हो।

तुम शुद्ध देखने की क्षमता हो।

मन में आग उठती है — क्रोध।

दर्पण उसे दिखाता है, पर जलता नहीं।

मन में कूड़ा उठता है — ईर्ष्या, द्वेष, वासना, भय, अपराधबोध।

दर्पण उसे दिखाता है, पर गंदा नहीं होता।

मन में फूल खिलता है — प्रेम, करुणा, आनंद।

दर्पण उसे दिखाता है, पर पकड़ता नहीं।

यही साक्षीभाव है।

तुम्हारी जागरूकता मन की सामग्री से दूषित नहीं होती। विचार गंदे हो सकते हैं, पर जानना गंदा नहीं होता। भावना भारी हो सकती है, पर उसे जानने की रोशनी भारी नहीं होती। अनुभव बदल सकता है, पर देखने की क्षमता अपनी खुली प्रकृति में रहती है।

मेरे प्रिय, यह बात केवल विचार नहीं। इसे अभी देखो।

अभी जो भी मन में है, क्या वह जाना जा रहा है?

यदि हाँ, तो जानने वाला उससे बड़ा है।

शुद्ध स्क्रीन

एक और तरह से देखो।

फिल्म चल रही है।

स्क्रीन पर युद्ध है।

स्क्रीन पर प्रेम है।

स्क्रीन पर वर्षा है।

स्क्रीन पर आग है।

स्क्रीन पर मृत्यु है।

स्क्रीन पर जन्म है।

दृश्य बदलते हैं। आवाज़ें बदलती हैं। भावनाएँ बदलती हैं। दर्शक रो सकता है, हँस सकता है, डर सकता है। पर स्क्रीन पर कुछ नहीं होता। आग के दृश्य से स्क्रीन जलती नहीं। वर्षा से स्क्रीन भीगती नहीं। मृत्यु से स्क्रीन मरती नहीं।

तुम्हारी जागरूकता भी ऐसी ही शुद्ध स्क्रीन है।

जीवन की फिल्म चल रही है।

मन कभी दुख का दृश्य दिखाता है।

कभी सुख का।

कभी भय का।

कभी आशा का।

कभी आध्यात्मिक खोज का।

कभी संसारिक उलझन का।

लेकिन जो सबको जान रहा है, वह दृश्य नहीं है। वह स्क्रीन है।

और जब तुम स्वयं को दृश्य मान लेते हो, तब माया शुरू होती है। जब तुम स्वयं को स्क्रीन की तरह पहचानते हो, दृश्य चलते रहते हैं, पर उनमें डूबना कम होता है।

साक्षीभाव दृश्य को रोकता नहीं।

साक्षीभाव स्क्रीन को पहचानता है।

कार्य करते हुए साक्षीभाव

अब प्रश्न उठता है — यह जीवन में कैसे हो?

मान लो तुम काम कर रहे हो। कोई दबाव है। समय कम है। किसी ने गलती कर दी। भीतर चिड़चिड़ापन उठता है।

पहली बात — चिड़चिड़ापन को तुरंत गलत मत कहो।

उसे देखो।

शरीर में कहाँ है?

चेहरे में कसाव?

छाती में गर्मी?

पेट में तनाव?

विचार क्या कह रहा है?

“यह हमेशा ऐसा ही करता है।”

“सब मुझे ही संभालना पड़ता है।”

“मेरे साथ अन्याय हो रहा है।”

इन वाक्यों को सुनो। तुरंत विश्वास मत करो। केवल देखो — मन कहानी बना रहा है।

यह देखना ही साक्षीभाव है।

फिर तुम आवश्यक कार्य करो। बात करनी हो, करो। सीमा बनानी हो, बनाओ। निर्णय लेना हो, लो। पर अब कार्रवाई अंधी प्रतिक्रिया से नहीं, थोड़ी जागरूकता से उठ सकती है।

साक्षीभाव निष्क्रिय नहीं बनाता।

वह कर्म को साफ़ करता है।

बात करते हुए साक्षीभाव

किसी से बात करते समय भी साक्षीभाव संभव है।

कोई तुम्हारी बात काट देता है। भीतर कुछ सिकुड़ता है। मन कहता है — “मुझे महत्व नहीं दिया गया।” आवाज़ में तीखापन आ सकता है।

बस एक क्षण।

केवल एक छोटा-सा अंतराल।

देखो — चोट उठी।

देखो — बचाव उठ रहा है।

देखो — जवाब देने की जल्दी है।

इस देखने से बातचीत बदल सकती है। शायद तुम फिर भी जवाब दो, पर अब उसमें थोड़ी स्पष्टता होगी। शायद तुम चुप रहो, पर दबाव से नहीं। शायद तुम कहो — “मुझे बात पूरी करने दो।” यह भी साक्षीभाव से हो सकता है।

साक्षीभाव का अर्थ हमेशा नरम बोलना नहीं।

कभी स्पष्ट बोलना भी साक्षीभाव है।

कभी मौन रहना भी।

कभी दूर होना भी।

कभी निकट आना भी।

प्रश्न यह नहीं कि बाहर क्या हुआ।

प्रश्न यह है — क्या भीतर बेहोशी थी या देखना था?

भय में साक्षीभाव

भय उठे तो मन तुरंत भविष्य में भागता है।

“क्या होगा?”

“यदि ऐसा हो गया तो?”

“मैं संभाल पाऊँगा या नहीं?”

भय शरीर में भी आता है। धड़कन तेज, श्वास भारी, पेट में कसाव, हाथ-पैर में बेचैनी।

साक्षीभाव का अभ्यास यह नहीं कि तुम कहो — “मुझे डरना नहीं चाहिए।”

नहीं।

कहो — “डर उठ रहा है।”

बस इतना।

फिर शरीर को महसूस करो।

श्वास को थोड़ा खुलने दो।

भय की कहानी को थोड़ी देर के लिए मत बढ़ाओ।

सिर्फ अनुभव को जानो।

भय एक ऊर्जा है। उसे कहानी मिलती है, तो वह तूफान बन जाता है। उसे जागरूकता मिलती है, तो वह धीरे-धीरे चलती हुई लहर बन सकता है।

पूछो —

अभी वास्तविक खतरा है या मन भविष्य बना रहा है?

यदि वास्तविक खतरा है, तो आवश्यक कार्य करो।

यदि केवल कल्पना है, तो उसे देखो।

देखने में भय को जगह मिलती है, पर शासन नहीं मिलता।

दर्द और दुख में साक्षीभाव

दुख उठे तो उसे भी देखना।

दुख को जल्दी ठीक करने की कोशिश मत करना।

कई बार हम दुख को इसलिए नहीं देखते क्योंकि हमें डर है कि वह हमें डुबो देगा। पर दुख को न देखने से वह मिटता नहीं। वह भीतर छाया बनकर रहता है।

साक्षीभाव में दुख को कहा जाता है — आओ, दिखाई दो।

कहाँ हो?

छाती में?

गले में?

आँखों के पीछे?

किस बात से जुड़ा है?

छोड़ दिए जाने का डर?

अस्वीकृति?

अकेलापन?

पुरानी चोट?

इसे विश्लेषण बनाकर मत बैठो। केवल धीरे से देखो। जैसे कोई मित्र बहुत देर से रो रहा हो, और तुम उसके पास चुपचाप बैठ जाओ।

कभी-कभी दुख को समाधान नहीं चाहिए।

उसे उपस्थिति चाहिए।

और साक्षीभाव वही उपस्थिति है।

साक्षीभाव “करना” नहीं

सबसे महत्वपूर्ण बात — साक्षीभाव भी कोई भारी काम मत बना लेना।

मन तुरंत कहेगा — “अब मुझे हमेशा साक्षी रहना है। यदि मैं भूल गया तो असफल हूँ।”

यह भी मन का जाल है।

साक्षीभाव कोई नया अहंकार नहीं है।

यह कोई आध्यात्मिक प्रदर्शन नहीं है।

तुम भूलोगे।

फिर याद आएगा।

फिर भूलोगे।

फिर लौटोगे।

यही स्वाभाविक है।

हर लौटना पर्याप्त है।

जैसे बच्चा चलना सीखता है। गिरता है, उठता है, फिर चलता है। गिरने को दोष नहीं बनाया जाता। वही सीखने का भाग है।

तुम भी जब बेहोशी में खो जाओ, बाद में देखो — खो गया था। बस। कोई आत्म-निंदा नहीं। कोई अपराधबोध नहीं। केवल देखना।

देखना जितनी बार लौटेगा, उतना ही गहरा होगा।

बस होना

मेरे प्रिय, अंत में साक्षीभाव बहुत सरल है।

जो है, उसे जानना।

बिना तुरंत उससे लड़ते हुए।

बिना तुरंत उसे अपना बनाते हुए।

बिना तुरंत उसे बदलते हुए।

तुम्हें अभी कुछ विशेष बनना नहीं।

तुम्हें अभी मन को जीतना नहीं।

तुम्हें अभी विचारों का अंत नहीं करना।

तुम्हें अभी संसार से दूर नहीं जाना।

तुम्हें केवल इतना देखना है —

विचार है।

भावना है।

शरीर है।

ध्वनि है।

जीवन है।

और यह सब जाना जा रहा है।

इस जानने में थोड़ा विश्राम करो।

यही साक्षीभाव है।

यही दर्पण की शुद्धता है।

यही स्क्रीन की निस्पर्शता है।

यही आकाश की खुली प्रकृति है।

माया अनुभवों से नहीं बनती।

माया अनुभवों से पहचान बनती है।

साक्षीभाव पहचान को प्रकाश में लाता है।

और प्रकाश में भ्रम धीरे-धीरे अपना भार खो देता है।

अब जहाँ हो, वहीं से शुरू करो।

काम के बीच।

बातचीत के बीच।

भय के बीच।

अकेलेपन के बीच।

आनंद के बीच।

जीवन के ठीक मध्य में।

क्योंकि जागरण जीवन से बाहर नहीं होता।

जागरण वहीं होता है जहाँ अभी मन अपनी कहानी बना रहा है।

बस उसे देखो।

और देखने में, कुछ भी किए बिना, तुम्हारे भीतर की स्वतंत्रता धीरे-धीरे अपना द्वार खोलने लगेगी।

जागृति: जब माया का पर्दा गिरता है



मेरे प्रिय,

जागृति कोई ऐसी घटना नहीं है जिसमें संसार अचानक गायब हो जाता है।

पेड़ फिर भी पेड़ रहते हैं।

नदी फिर भी बहती है।

शरीर फिर भी चलता है।

लोग फिर भी बोलते हैं।

बाज़ार में आवाज़ें फिर भी उठती हैं।

भोजन पकता है।

संबंध चलते हैं।

काम सामने आता है।

रात होती है।

सुबह होती है।

जीवन का दृश्य चलता रहता है।

पर भीतर कुछ मूल रूप से बदल जाता है।

दृश्य नहीं बदलता।

दृश्य को देखने की पहचान बदल जाती है।

पहले तुम फिल्म में खोए हुए पात्र थे। अब फिल्म चल रही है, पर तुम स्क्रीन को पहचानते हो। पहले हर सुख तुम्हें ऊपर ले जाता था, हर दुःख तुम्हें तोड़ देता था। अब सुख आता है, दुःख आता है, पर उनके पीछे एक शांत खुलापन दिखाई देता है।

यही जागृति है।

संसार का अंत नहीं।

भ्रम का अंत।

जब मन की कहानी देख ली जाती है

जागृति का अर्थ यह नहीं कि मन कभी विचार नहीं करेगा।

मन विचार करेगा।

स्मृतियाँ आएँगी।

योजनाएँ बनेंगी।

कभी भय का हल्का बादल भी आ सकता है।

कभी शरीर में दर्द होगा।

कभी किसी की बात हृदय को छू सकती है।

पर अब मन की कहानी को पूर्ण सत्य नहीं माना जाता।

पहले विचार उठता था, और तुम उसमें बह जाते थे।

अब विचार उठता है, और वह दिखाई देता है।

पहले भय उठता था, और तुम कहते थे — “मैं भय हूँ।”

अब भय उठता है, और तुम देखते हो — “भय उठ रहा है।”

पहले अपमान आता था, और “मैं” घायल हो जाता था।

अब चोट दिखाई देती है, पर उसके चारों ओर पुरानी कहानी उतनी कठोर नहीं बनती।

जागृति मन का नष्ट होना नहीं है।

जागृति मन की पारदर्शिता है।

जैसे काँच साफ़ हो जाए। बाहर का दृश्य वही है, पर अब धुंध कम है। जैसे पानी स्थिर हो जाए। आकाश पहले भी था, पर अब प्रतिबिंब स्पष्ट है। जैसे दीपक जल जाए। कमरे की वस्तुएँ पहले भी थीं, पर अब उनका स्वरूप डरावना नहीं लगता।

जागृति में संसार का भार घटता है, क्योंकि “मेरी कहानी” का भार घटता है।

तुम पहली बार देखना शुरू करते हो कि जीवन घट रहा है।

और तुम वही मौन उपस्थिति हो जिसमें यह घट रहा है।

हल्केपन की सुगंध

जब माया का पर्दा थोड़ा भी गिरता है, तो भीतर एक गहरा हल्कापन आता है।

यह हल्कापन उत्साह जैसा नहीं है।

यह कोई नशा नहीं।

यह कोई उछाल नहीं।

यह बहुत शांत है।

जैसे किसी ने वर्षों से कंधे पर रखा हुआ अदृश्य बोझ धीरे से उतार दिया हो।

तुमने उसे इतना लंबे समय तक ढोया था कि बोझ ही सामान्य लगने लगा था।

अब जब वह उतरता है, तो शरीर नहीं, अस्तित्व हल्का लगता है।

क्यों?

क्योंकि अब हर क्षण स्वयं को बचाने की आवश्यकता कम हो गई।

अब हर बात में अपनी छवि सुधारने की आवश्यकता कम हो गई।

अब हर संबंध में पूर्णता माँगने की भूख कम हो गई।

अब हर अनुभव को पकड़कर “मेरा” कहने की जल्दी कम हो गई।

यह हल्कापन किसी उपलब्धि से नहीं आया।

यह उस गलत पहचान के ढीले पड़ने से आया है जिसे तुम जीवन भर “मैं” कहते रहे।

जब झूठा केंद्र हल्का होता है, तो जीवन का भार भी हल्का हो जाता है।

मौन की विजय

मेरे मित्र, जागृति की विजय शोर से नहीं होती।

वह मौन की विजय है।

मन चाहता है कि जागृति के बाद कोई घोषणा हो — “अब मैं जाग गया।” वह चाहता है कि कोई विशेष पहचान मिले। कोई नया व्यक्तित्व। कोई आभा। कोई प्रमाण। कोई स्थायी सुख।

लेकिन जागृति जितनी गहरी होती है, दावा उतना ही कम होता है।

क्योंकि दावा करने वाला मन ही तो देखा गया है।

जो सच में जागता है, वह भीतर से बहुत सरल हो जाता है। वह यह नहीं सोचता कि वह कुछ बन गया है। उसे केवल इतना स्पष्ट होता है कि जो बनने का खेल था, वह मन का था।

मौन में एक अद्भुत गरिमा है।

वह कहता नहीं — “मैं सत्य हूँ।”

वह केवल है।

जैसे आकाश स्वयं की घोषणा नहीं करता।

जैसे फूल अपनी सुगंध का विज्ञापन नहीं करता।

जैसे सूर्य प्रमाण नहीं देता कि वह प्रकाश है।

जागृति भी ऐसी ही है।

वह दिखावा नहीं करती।

वह उपस्थिति बन जाती है।

फिल्म चलती रहती है

जीवन की फिल्म समाप्त नहीं होती।

बस अब तुम उसे फिल्म की तरह देखना शुरू करते हो।

फिल्म में दुख का दृश्य आए, तो आँसू भी आ सकते हैं। पर भीतर कहीं पता रहता है — यह दृश्य है। फिल्म में प्रेम का दृश्य आए, तो हृदय खुल सकता है। पर भीतर पकड़ कम होती है। फिल्म में संघर्ष आए, तो कर्म करना पड़ सकता है। पर भीतर का केंद्र दृश्य में खोता नहीं।

पहले तुम पात्र की नियति में बँधे थे।

अब तुम स्क्रीन की शुद्धता को पहचानते हो।

इसका अर्थ यह नहीं कि जागृत व्यक्ति असंवेदनशील हो जाता है। नहीं। कई बार वह अधिक संवेदनशील हो जाता है, क्योंकि अब उसके भीतर अपनी कहानी का शोर कम है। वह दूसरे की पीड़ा को अधिक साफ़ सुन सकता है। वह प्रेम कर सकता है, पर पकड़ कम होती है। वह कर्म कर सकता है, पर कर्ता का बोझ कम होता है। वह संसार में चल सकता है, पर संसार उसके भीतर दीवारें नहीं बनाता।

फिल्म चलती है।

पर स्क्रीन जलती नहीं।

दृश्य बदलते हैं।

पर देखने की रोशनी बनी रहती है।

यही स्वतंत्रता है।

पात्रों के लिए दुख नहीं, करुणा

जब तुम फिल्म को फिल्म जानते हो, तो इसका अर्थ यह नहीं कि पात्रों से घृणा हो जाती है। नहीं। करुणा जन्म लेती है।

क्योंकि अब तुम देखते हो कि सब अपने-अपने स्वप्न में उलझे हैं। कोई सम्मान के पीछे दौड़ रहा है। कोई प्रेम के भय में काँप रहा है। कोई धन को सुरक्षा मानकर सो नहीं पा रहा। कोई धर्म को पहचान बनाकर लड़ रहा है। कोई आध्यात्मिकता को भी अहंकार बना रहा है।

तुम उन्हें दोष नहीं देते।

तुम देखते हो — यही माया है।

और यह देखना कठोर नहीं, करुणामय है।

जैसे कोई जागा हुआ व्यक्ति सोते हुए बच्चे को स्वप्न में रोते देखे। वह बच्चे पर हँसता नहीं। वह उसे झकझोरता भी नहीं। वह उसके पास बैठता है। धीरे से स्पर्श करता है। कहता है — “जागो, यहाँ कोई बाघ नहीं है।”

जागृत करुणा ऐसी ही है।

वह संसार को झूठ कहकर त्यागती नहीं।

वह स्वप्न में डूबे हुए हृदयों के पास दीपक रखती है।

कमल की तरह

जागृत जीवन कमल जैसा है।

कमल कीचड़ में उगता है।

कीचड़ को अस्वीकार नहीं करता।

उससे भागता नहीं।

उसे शत्रु नहीं मानता।

पर कीचड़ से चिपकता भी नहीं।

वह उसी जल में खड़ा है, उसी पृथ्वी से पोषण लेता है, उसी संसार में खिलता है
— फिर भी उसकी पंखुड़ियों पर जल टिकता नहीं। कीचड़ उसे गंदा नहीं कर
पाती।

मेरे प्रिय, जागृत व्यक्ति भी संसार से भागता नहीं।

वह काम करता है।

लोगों से मिलता है।

प्रेम करता है।

बात करता है।

निर्णय लेता है।

कभी हँसता है।

कभी मौन रहता है।

कभी कठोर सत्य कहता है।

कभी किसी के दुख में बैठता है।

कभी साधारण भोजन खाता है।

कभी बाज़ार से गुजरता है।

कभी बिल भरता है।

कभी शरीर की थकान देखता है।

पर भीतर एक कमल की तरह अछूता रहता है।

अछूता रहने का अर्थ यह नहीं कि वह ठंडा है।

अर्थ यह है कि भीतर पहचान की चिपकन नहीं है।

वह कीचड़ को जानता है।

पर स्वयं को कीचड़ नहीं मानता।

वह जल को जानता है।

पर जल में डूबा नहीं रहता।

वह दुनिया में है।

पर दुनिया उसके भीतर जंजीर नहीं बनती।

कर्म बिना बंधन

जागृति के बाद कर्म रुकता नहीं।

बल्कि कर्म अधिक स्वाभाविक हो सकता है।

अब कार्य छवि बनाने के लिए नहीं होता।

अब सेवा श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए नहीं होती।

अब प्रेम पूर्णता माँगने के लिए नहीं होता।

अब मौन पवित्र दिखने के लिए नहीं होता।

जो सामने है, वह किया जाता है।

जहाँ बोलना है, बोलना होता है।

जहाँ चुप रहना है, चुप रहना होता है।

जहाँ चलना है, चलना होता है।

जहाँ रुकना है, रुकना होता है।

निष्क्रियता जागृति नहीं है।

बेहोशी में किया गया कर्म भी बंधन है।

जागरूकता में किया गया कर्म हल्का है।

जैसे हवा पेड़ की शाखाओं को छूकर निकल जाती है। वह दावा नहीं करती।

जैसे नदी बहती है। वह अपने बहने का बोझ नहीं उठाती। जैसे दीपक जलता है।

वह अपने प्रकाश का गर्व नहीं करता।

जागृत जीवन में कर्म होता है, पर भीतर कर्ता की कठोर गाँठ ढीली होती है।

प्रेम बिना पकड़

जब माया का पर्दा गिरता है, प्रेम बदल जाता है।

वह छोटा नहीं होता।

वह सूखता नहीं।

वह भागता नहीं।

वह अधिक विशाल होता है।

पहले प्रेम में चाह बहुत होती थी। मुझे समझो। मुझे मत छोड़ो। मुझे पूरा करो। मेरे अनुसार चलो। मेरी कमी भर दो। मेरी अकेलेपन को मिटा दो।

अब प्रेम में जगह होती है।

तुम्हें देखने की जगह।

तुम्हें होने देने की जगह।

स्वयं को भी देखने की जगह।

सीमा बनाने की भी जगह।

निकटता की भी जगह।

दूरी की भी जगह।

यह प्रेम पकड़ से मुक्त होता है, इसलिए अधिक निर्मल होता है। उसमें करुणा होती है, पर निर्भरता कम होती है। उसमें आत्मीयता होती है, पर स्वामित्व कम होता है। उसमें गर्माहट होती है, पर भय कम होता है।

कमल जल को छूता है, पर जल में डूबता नहीं।

जागृत प्रेम संसार को छूता है, पर उसमें खोता नहीं।

दुख आता है, पर जड़ नहीं पकड़ता

जागृति का अर्थ यह नहीं कि शरीर को पीड़ा नहीं होगी या हृदय में कभी दुख की लहर नहीं उठेगी।

लहर उठ सकती है।

पर अब वह जड़ नहीं पकड़ती।

पहले दुख आता था, और मन तुरंत कहता था — “यह मेरा है। यह हमेशा रहेगा। जीवन अन्यायपूर्ण है। मैं अकेला हूँ।”

अब दुख आता है, और देखा जाता है।

शरीर में उसका स्थान देखा जाता है।

उसकी लहर देखी जाती है।

उसकी कहानी देखी जाती है।

उसकी जड़ में कोई अपेक्षा, कोई स्मृति, कोई पकड़ दिख सकती है।

दुख को सम्मान मिलता है, पर सिंहासन नहीं।

भय को जगह मिलती है, पर शासन नहीं।

विचार को सुना जाता है, पर अंतिम सत्य नहीं माना जाता।

यही जागृत हल्कापन है।

अंधकार में भी प्रकाश

जब माया का पर्दा गिरता है, तब यह नहीं कि केवल प्रकाश ही दिखता है। बल्कि यह दिखता है कि अंधकार भी प्रकाश में ही जाना जा रहा है।

यह बहुत गहरी पहचान है।

अशांति आती है — वह भी जानी जा रही है।

भ्रम आता है — वह भी जानी जा रही है।

पुरानी आदत उठती है — वह भी जानी जा रही है।

इसलिए जागृति किसी विशेष अवस्था पर निर्भर नहीं रहती। वह हर अवस्था में जागरूकता को पहचानती है।

जैसे आकाश तूफान में भी आकाश है।

जैसे स्क्रीन दुखद दृश्य में भी स्क्रीन है।

जैसे दर्पण कुरूपता को दिखाकर भी कुरूप नहीं होता।

वैसे ही जागरूकता हर अनुभव में अपनी शुद्धता में है।

उसे पवित्र अनुभव की आवश्यकता नहीं।

वह अनुभवों को पवित्रता देती है।

अंतिम दहलीज़

अब मेरे प्रिय, कोई बड़ी बात समझने की कोशिश मत करो।

थोड़ा रुक जाओ।

जिसने अब तक इस पुस्तक को पढ़ा, वह कौन है?

जिसने माया के बारे में सुना, मन को समझा, विचारों का जाल देखा, सुख-दुःख का पेंडुलम पहचाना, साक्षीभाव की सुगंध ली — वह कौन है?

विचार उत्तर देंगे।

उन्हें उत्तर देने दो।

पर तुम उत्तर से पहले की मौन उपस्थिति को महसूस करो।

यहाँ कोई जल्दी नहीं।

यहाँ कोई निष्कर्ष नहीं।

यहाँ कोई प्रमाण नहीं।

केवल यह खुला जानना।

यही वह स्थान है जहाँ माया का पर्दा हल्का पड़ता है।

क्योंकि माया विचार में है।

तुम विचार को देख रहे हो।

माया पहचान में है।

तुम पहचान को देख रहे हो।

माया कहानी में है।

तुम कहानी को देख रहे हो।

जो देख रहा है, वह माया का भाग कैसे होगा?

वह तो प्रकाश है जिसमें पर्दा भी दिखाई देता है।

अंतिम प्रसाद

मेरे प्रिय,

अब संसार को रहने दो।

उसे मिटाने की आवश्यकता नहीं।

मन को रहने दो।

उसे मारने की आवश्यकता नहीं।

विचारों को आने दो।

उन्हें रोकने की आवश्यकता नहीं।

सुख आए, उसे मुस्कान से देखो।

दुख आए, उसे करुणा से देखो।

भय आए, उसे जगह दो।

प्रेम आए, उसे बहने दो।

सब कुछ आने दो।

सब कुछ जाने दो।

तुम केवल उस मौन को पहचानो जो न आता है, न जाता है।

जो बचपन में भी था।

जो आज भी है।

जो विचार से पहले है।

जो विचार के बाद भी है।

जो दुख को जानता है, पर दुख नहीं होता।

जो सुख को जानता है, पर सुख पर निर्भर नहीं होता।

जो संसार को देखता है, पर संसार में खोता नहीं।

तुम वही हो।

इस वाक्य को विचार मत बनाना।

इसे घोषणा मत बनाना।

इसे पहचान मत बनाना।

बस अभी, बहुत शांत होकर, इसे अपने भीतर उतरने दो।

जैसे वर्षा की बूँद सूखी धरती में उतरती है।

जैसे सूर्य की पहली किरण कुहरे को बिना शोर हटाती है।

जैसे कमल सुबह की नमी में धीरे-धीरे खुलता है।

यही जागृति है।

कोई युद्ध नहीं।

कोई उपलब्धि नहीं।

कोई शोर नहीं।

केवल पर्दे का गिरना।

और पर्दा गिरते ही दिखाई देता है —

मंच खाली नहीं था।

प्रकाश हमेशा जल रहा था।

तुम कभी अंधकार में नहीं थे।

केवल आँखें स्वप्न में थीं।

अब उन्हें धीरे से खुलने दो।

श्वास को आने दो।

श्वास को जाने दो।

शरीर को धरती पर टिकने दो।

मन को अपने अंतिम वाक्य बोल लेने दो।

और तुम—

उस मौन में विश्राम करो

जहाँ से सब उठता है

और जहाँ सब लौट जाता है।



अब कुछ पाने की जल्दी मत करो।
जो देखा जा रहा है, वह तुम नहीं हो।
जो देख रहा है, उसमें विश्राम करो।
माया का पर्दा वहीं गिरता है
जहाँ जागरूकता स्वयं को पहचान ले।
यही मौन तुम्हारा घर है।



— आदिसत्व

Designed as a premium digital ebook for Nirvan Dham.